Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 9 | ISSUE : 4 | APRIL 2023

"शिव की परिकल्पना का ऐतिहासिक आधार : मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा संस्कृति के विशेष संदर्भ में"

डॉ सुरभि [1]

[1] असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास, (विद्या संबल योजना) राजकीय महाविद्यालय, रतनगढ़

ABSTRACT:

भारतीय संस्कृति के इतिहास में हिन्दू देवी-देवताओं की परिकल्पना का महत्वपूर्ण स्थान है। यह परिकल्पना भारतीय मानस के विकास से पूरी तरह जुड़ी हुई है। प्रकृति के रहस्यात्मक महत्व को समझने के लिए मानव ने युगों युगों से इतिहास के विभिन्न पृष्ठों पर किन्हीं अति मानवीय दैवी शक्तियों की समय-समय पर परिकल्पना की है और यथार्थ को पकड़ पाने में जहाँ पर मानव असमर्थ रहा है, उसे किसी अज्ञात शक्ति के सम्बद्ध कर दिया गया है। यह प्रवृत्ति मानव के विकास में आदिम युग से ही परिलक्षित होती है। भारतीय ही नहीं यदि हम मिस्र, सुमेर, बेबीलोनिया और मेक्सिको की मय जाति की संस्कृतियों का ऐतिहासिक अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि वहाँ भी अनेक प्राकृतिक तथ्यों को व्याख्यायित करने के लिए विभिन्न दैवी शक्तियों की कल्पना की गयी है। द्रविड़ आर्य, किरात, शक, हूण और यवन आदि संस्कृतियों ने अपने ढंग से हमारी संस्कृति को विकसित करने में योगदान दिया है और किसी न किसी रूप में इनमें से कई का भारतीय देवी देवताओं की परिकल्पना में समय-समय पर योगदान रहा है। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि आर्य वैदिक संस्कृति मूलतः मूर्तिपूजक नहीं थी, किन्तु बहुदेववाद स्पष्टतः प्रतिष्ठित था। प्रायः सभी देवी-देवताओं को वेदों में मानवीय परिवेश में परिकल्पित किया गया है, यद्यपि उनके गुणों का वर्णन करते समय उन्हें अतिमानवीय देवी स्वरूप दे दिया गया है। जहाँ तक मूर्ति पूजा का प्रश्न है, भारतीय संस्कृति में मूर्तिपूजा द्रविड़ों की देन है। यहाँ तक कि कुछ विद्वान समाधिस्थ शिव, गणेश, कार्तिकेय जैसे देवताओं की परिकल्पना को द्रविड़ की देन मानते हैं। शिव जैसी मूर्ति का हड़प्पा और मोहनजोदड़ो के उत्खनन में पाया जाना इसके प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। अस्तु शिव की परिकल्पना का ऐतिहासिक आधार मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा संस्कृति से परिपोषित परिलक्षित होता है।

KEYWORDS:

शिव की परिकल्पना , ऐतिहासिक वर्णन , मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा संस्कृति , परिकल्पना, दैवी स्वरूप।

आलेख प्रस्तुति

भारतीय पुरातन सभ्यता का उदय एक सीमांकित उपमहाद्वीप में हुआ था, जिसे उत्तर दिशा की ओर से विशालतम एवं विश्व की सर्वोच्च पर्वत श्रेणी 'हिमालय' जैसा प्रहरी मिला और यह हिमगिरि का उत्तुंग गिरि शिखर ही भारत को शेष एशिया तथा सम्पूर्ण विश्व से पृथकता भी प्रदान करता है। हिमालय से प्रवाहित होने वाली गंगा नदी ने भी भारत के विस्तृत भूभाग को उपजाऊ बनाया और इसके क्षेत्र में भी भारत की अति प्राचीन सभ्यता पुष्पित एवं पल्लवित हुई। भारत की प्राचीन ऐतिहासिक सभ्यता की आदिम परम्पराएँ अद्यतन अविच्छिन्न रूप से सुरक्षित बनी हुयी हैं, इस दृष्टि से यह सभ्यता मिस्र, मेसोपोटामिया तथा यूनान की सभ्यता से अपनी भिन्नता प्रकट करती है। ऐतिहासिक तत्ववेत्ताओं के अन्वेषण से पहले मिस्र या इराक के किसानों को अपने पूर्वजों की संस्कृति का धूमिल मात्र भी अभिज्ञान नहीं था। वहीं भारत में सबसे पहले आने वाले यूरोपीय यात्रियों को यहाँ एक ऐसी संस्कृति का दर्शन हुआ, जिसे अपनी प्राचीनता का पूर्णतः ज्ञान था उन्हें यहाँ एक ऐसी संस्कृति मिली जो अपने अतीत के वैभव का गुणगान सहर्ष प्रस्तुत कर रही थी तथा यह दम्भ भरती दिखाई पड़ी कि उसके स्वरूप में अद्यतन सैद्धान्तिक रूप से कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। आज के युग में भी पौराणिक कथाएँ जनश्रुतियों के माध्यम से भारतीय समाज का अभिन्न अंग बनी हुई हैं।

आर्यों के साहित्यिक इतिहास ग्रन्थ वेदों से ही भारतीय समाज, धर्म – तथा अर्थव्यवस्था एवं राजनीतिक भविष्य पर प्रकाश पड़ता है। इसलिए यह अपरिहार्य हो जाता है कि भारतीय इतिहास का अध्ययन इसी काल से आरम्भ किया जाय तथा इसी परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की रूपरेखा के निर्माण का आरम्भ माना जाय लेकिन 1922-23 ई० में प्रारम्भ हुए पुरातात्विक उत्खनन से एक नये युग एवं आर्यों से पूर्व के प्राचीन भारत के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुयी और हमारे अध्ययन का क्षेत्र आर्यों से पूर्व के अतीत में पहुँच गया।

20वीं शताब्दी में ही भारत में पुरातत्व सम्बन्धी खुदाई व्यापक स्तर पर प्रारम्भ हुई। इस उत्खनन के फलस्वरूप प्रथम बार प्राचीन भारतीय नगरों के ध्वंसावशेष प्रकाश में आने प्रारम्भ हुए। सर जॉन मार्शल के संचालन में सिन्धु सभ्यता की खोज निश्चय ही पुरातत्व विभाग की महानतम सफलता थी। मोहनजोदड़ो हड़प्पा तथा बलूचिस्तान के कई अन्य स्थानों में हुई खुदाईयों से उस प्रदेश में एक बड़ी संस्कृति के अस्तित्व का पता चला जिसे ताम्र पाषाण (बाल्कोलिथिक) संस्कृति का नाम दिया जा सकता है। उसमें नव पाषाण और ताम्र दोनों युगों की विशेषताएं पायी जाती हैं। इसे अब सामान्यतः सिन्धु घाटी की सभ्यता कहते हैं।

हमारा प्राचीनतम ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्पन्न साहित्यिक स्रोत ऋग्वेद है, जिसके कुछ भागों की रचना 1000ई०पू० से पहले हुई थी। शेष वैदिक साहित्य- सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद की रचना बाद में हुई। ये वैदिक साहित्य न केवल भारतीय आर्यों के वरन् हिन्द-जर्मन नाम से पुकारे जाने वाले समस्त आर्य समूह के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। अस्तु सिन्धु सभ्यता के प्रकाश में आ जाने से पता चलता है कि वैदिक काल से पहले भी धर्म एवं ईश्वर का अस्तित्व था। लेकिन प्राचीन भारतीय साहित्यों से ही हमें लिखित साक्ष्य मिलता है। भारत में संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में धर्म का प्रमुख स्थान है। भारतीय विचार धारा धर्म और दर्शन के समन्वित मिश्रण से प्रवाहित हुई है।

धर्म की संकल्पना किंचित् अपवादों को छोड़कर प्रायः सार्वभौम रही है। मानव के बौद्धिक विकास के साथ ही उसकी धार्मिक मान्यताओं में परिष्कार एवं परिवर्तन हुए। किन्तु धर्म के क्षेत्र में परम्परा के अतिशय प्रभाव के कारण, सभ्यजनों के धार्मिक विश्वासों में भी आदिम तत्व अविकल रूप से विद्यमान दिखाई देते हैं। सिन्धु सभ्यता भी इसका अपवाद नहीं थी। सिन्धु घाटी में बहुत से विशाल खेड़े थे, जिन पर शताब्दियों से आंधी, पानी और प्रकृति के परिवर्तनों ने मोटी मिट्टी की तह जमा दी थी। पुरातत्व विभाग द्वारा की गयी खुदाई में उन विशाल खेडों के नीचे जो भग्नावशेष निकले हैं उनसे यह प्रमाणित हुआ है कि संभवतः अब से पांच-छः हजार वर्ष पहले सिन्धु घाटी में एक अत्यन्त समुन्नत और समृद्ध सभ्यता विकसित हुई थी जो उस काल में संभवतः सम्पूर्ण पृथ्वी पर सर्वाधिक समुन्नत स्वरूप धारण कर चुकी थी। हड़प्पा सभ्यता में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के संबन्ध में यहाँ से प्राप्त मृण्मय मुद्राओं पर उत्कीर्ण आकृतियों एवं मूर्तियों के आधार पर कुछ ठोस परिकल्पनाएं की गयी हैं इस आर्येत्तर धर्म के संदर्भ में पुरातत्वविदों ने मुख्यतः यहाँ पशु-पूजा, जल-पूजा, परम-पुरुष (आदि शिव) की पूजा का प्रजनन प्रतीकों की पूजा, मातृ देवी की पूजा, वृक्ष पूजा, जादू-टोना आदि के प्रचलन को स्वीकार किया है। मिस्र और मेसोपोटामिया की समकालीन सभ्यताओं में प्रकृति-पूजा की परम्परा सुप्रचलित थी सँधव लिपि के अपठित होने के कारण आकाश, वायु जैसी अमूर्त प्राकृतिक शक्तियों की उपासना के प्रचलन के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन है किन्तु जल पूजा की पम्परा यहाँ निश्चित रूप में ज्ञात थी। वस्तुतः मातृ देवी, जल, पशु एवं पादप की उपासना सैन्धव धर्म के प्राचीनतम् स्तरों से सम्बद्ध प्रतीत होती है क्योंकि इन सबका सम्बन्ध मानव की प्राथमिक आवश्यकताओं की

पूर्ति से है।

प्रागैतिहासिक जातियों में शिव की अवधारणा-

सिन्धु सभ्यता के पोषक किस जाति या नस्ल के थे, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है।इतिहासविदों का विचार है कि आर्य जाति के उदय होने से पूर्व पश्चिमी एशिया में सभ्यता का विकास भूमध्य सागरीय जाति ने जिसको आइबीरियन भी कहा गया है, किया था। सिन्धु सभ्यता का विकास इसी द्रविड़ आइबीरियन जाति ने किया था। मोहन जोदड़ो के अधिकांश निवासी भूमध्य सागरीय थे।

इतिहासज्ञों का मत है कि आर्यों के आगमन के पहले इस देश में द्रविड़ जाति का राज्य था। वी०डी० महाजन का विचार है कि द्रविड़ लोग पूर्वी भूमध्य सागर खण्ड की ओर से भारत में आये। सभी द्रविड़ भाषा बोलते थे। हिन्दू धर्म, रीति रिवाजों, विचारों, दन्त कथाओं और पौराणिक कथाओं में भी द्रविड़ों का प्रभाव देखने को मिलता है।

विद्वानों का कहना है कि पत्रों, पुष्पों, फलों तथा जल के साथ पूजा करने का ढंग भी द्रविड़ पद्धति का परिणाम है। ये हवन विधि या अग्नि पूजा से परिचित थे प्रो० मार्क कालिन्स (Mark Callins) का कथन है कि संस्कृत का पूजा शब्द वास्तव में द्रविड़ जाति के पू (पुष्प) शब्द का दूसरा रूप है। इन जातियों के मध्य उत्खनन के द्वारा देवी की अल्पाकार मूर्तियाँ अनेक स्थानों पर पायी गयी हैं और क्वेटा के उत्तर में जोब संस्कृति के लोगों में लिंग पूजा संबन्धी चिन्ह भी प्राप्त हुए हैं बहुत सी प्राचीन संस्कृतियों में देवी माँ की आराधना वृषभ की आराधना से संबन्धित थी और यह भी उसका अपवाद रूप नहीं थी । अनुसंधान में वृषभों की अल्याकार मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं और वृषभ, जोब संस्कृति क्षेत्रों के सार्वाधिक महत्वपूर्ण कुल्ली और राना घुडाई के मृदभाण्डो के श्रृंगार की लोकप्रिय प्रवृत्ति रही है।

वी०डी० महाजन का मानना है कि 'शिव' नाम द्रविड़ जाति की देन है। द्रविड़ों में संभवतः 'शिवन' शब्द प्रचलित था। यहीं से संस्कृत भाषा में 'शिव' शब्द लिया गया होगा क्योंकि ऋग्वेद में शिव का उल्लेख नहीं है। द्रविड़ भाषा में 'शिव' शब्द का अर्थ लाल है। संभवतः इसी आधार पर उत्तर वैदिक साहित्य में शिव के लिए 'नीललोहित' या 'नीलकण्ठ' वाला रक्ताभ देवता कहा गया है। द्रविड़ों के मुरुकन' नाम के देवता की तुलना शिव के पुत्र स्कन्द' या 'कुमार से की जा सकती है। प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर माना जाता है कि लिंग पूजा भी द्रविड़ जाति के प्रभाव से ग्रहण की गयी थी। दविडों को शिव का उपासक होने के कारण उनके नाम 'त्र्यम्बक' के आधार पर दक्षिण भारत के एक क्षेत्र को तैलांगाना कहा जाता है।

सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि सिन्धु सभ्यता की खोजों से हमें अनेक अप्रत्याशित सुराग मिले हैं, जो भारतीय धर्म और संस्कृति के बहुत से ऐसे पहलुओं को समझने में सहायक हुए हैं, जिनका समाधान अभी तक भारतीय सभ्यता का अध्ययन करने वाले नहीं कर सके थे शैव धर्म के इतिहास के लिए तो इन खोजों का अपार महत्त्व है। सैंधव सभ्यता के विभिन्न स्थलों से 500 से अधिक मोहरे प्राप्त हुयी है। वे आकार में छोटी और एक प्रकार की मिट्टी की बनी है। ये मोहरें समय-समय पर रावी नदी के पुराने आधार से प्राप्त होती रहीं हैं।' सिन्धु घाटी की सभ्यता से परिचय कराने में इनका सर्व प्रथम स्थान है। उपर्युक्त कथन जनरल कनिंघम जैसे इतिहासज्ञों ने कहा है।

मोहन जोदड़ों से प्राप्त मोहरें एवं शिव परिकल्पना –

इन मोहरों में मोहन जोदड़ों से प्राप्त मुद्रा (मैके सं 420) विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिस पर एक पुरुष का अंकन मिलता है जिससे विदित होता है कि सैंधव जन एक विशिष्ट पुरुष देवता की उपासना करते थे। इस मुहर में पुरुष देवता पद्मासन आसीन मुद्रा में सम्मुख दर्शन, ध्यानावस्थित, नासाग्र दृष्टि होकर अवस्थित हैं। यह पुरुष देवता त्रिमुख एवं लम्बी शिरोभूषा वाला है, जिसके प्रत्येक मुख की तीन-तीन आंखे हैं और वह देवता पशुओं से घिरे एक साधारण से भारतीय मंच पर योगी की मुद्रा में बैठा है। सम्भवतः यह शिवरूप है । जैसा कि सर्व विदित है शिव को महायोगी पशुपति और त्रिमुखी कहा जाता है। यह सत्य भी है । उनके मुख्य आयुध तीसरा नेत्र और त्रिशूल हैं। उनका यह नेत्र , जिसे वह अपने क्रोधित होने पर ही खोलते हैं और जिसे खोलने पर प्रलय आती है और जो भी सामने पड़ता है वह भस्म हो जाता है, एक दैदीप्यमान ऊर्जा ज्योति है। एक मान्यता के अनुसार कामदेव को शिव ने इसी तीसरे नेत्र से जला दिया था और जब उसकी पत्नी ने उनके समक्ष अनुनय-विनय किया तो उन्होंने उसे अनंग रहकर अमर और सर्वव्यापी होने का वरदान दिया था।

मोहनजोदड़ो से प्राप्त इस मूर्ति में शिव संबन्धित आज प्रचलित लगभग सभी मान्यताओं का प्रतीकात्मक चित्रण हो जाता है। यहाँ योगासन मुद्रा से उनकी महायोगी उपाधि की समानता की जाती है। उनके सिर पर लम्बी शिरोभूषा के दोनों ओर एक-एक सींग है जो एक त्रिशुल का आकार बनाती है। उसके दोनों ओर और नीचे पशुओं का अंकन है। दाहिनी ओर व्याघ्र (Tiger) और हाथी और बांई ओर गैंडा तथा भैंसा अंकित है और स्टूल के नीचे दो हिरण बैठे हैं। मार्शल ने इसे पशुपति की संज्ञा दी है वह द्विपदों तथा चतुष्पदों के स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित प्रतीत होते हैं। इस देवता के दोनों हाथ चूड़ियों से अलंकृत हैं तथा इसके वक्ष स्थल पर भी त्रिकोणावली के आकार की कोई अलंकृत वस्तु है जिसे मार्शल ने वक्ष कवच की संज्ञा दी है। मोहनजोदड़ों की दो अन्य मुद्राओं पर भी इस पुरुष देवता से मिलती-जुलती आकृतियाँ अंकित हैं। मोहन जोदड़ो की मुद्रा पर अंकित योगासनासीन इस देवता का स्परूप जहाँ उसकी शान्त मुद्र के कारण सौम्य है, वहीं हिरन्न पशुओं से आवृत्त होने के कारण भयोत्पादक भी है। उसका अलंकृत परिधान तथा श्रृंग मुकुट उसकी गौरवपूर्ण स्थिति को अभिव्यक्त करता है। उल्लेखनीय है कि सुमेर, बेबीलोन तथा मिस्र की प्राचीन संस्कृतियों में देवताओं एवं शासकों को श्रृंग मुकुट धारण किये हुए प्रदर्शित किया गया है। श्रृंग कदाचित् गौरव और शक्ति का प्रतीक माना जाता था। सिन्धु सभ्यता के विभिन्न स्थलों से पाये गये। लिंगनुमा पत्थर और मिट्टी के टुकड़ों के साक्ष्य पर इस मूर्ति को शिव मानने का आधार और मजबूत हो जाता है ।अधिकांश विद्वानों ने मार्शल के इस मत का समर्थन किया है, किन्तु मोहनजोदड़ो की मुद्रा पर अंकित इस पुरुष देवता की पहचान को लेकर इतिहासकारों ने अनेक मत व्यक्त किये हैं। अभी तक इस संदर्भ में सर्वाधिक स्वीकृत एवं श्रद्धेय मत सर जॉन मार्शल का है, जिन्होने इसे शिव पशुपति का प्रारूप माना है। गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, आर०एन० दण्डेकर तथा अल्विन दम्पति आदि अनेक इतिहासकारों एवं पुरातत्वविदों ने सर मार्शल के मत को स्वीकार किया है। ऐतिहासिक युग में शिव की चार और पाँच मुख वाली मूर्तियाँ बनाई जाती थीं। इस संदर्भ में एलीफैण्टा से प्राप्त शिव प्रतिमा सहज ही हमारा ध्यान आकृष्ट करती है।

माहन जोदड़ो की मुद्रा पर अंकित विश्व रूप त्वष्ट् का त्रिशीर्ष पुरुष से सादृश्य तथा इन्द्र द्वारा उसका वध इस बात का संकेतक प्रतीत होता है कि सैन्धव जनों द्वारा पूजित यह पुरुष देवता, जिसे मार्शल ने आदि शिव माना है, ऋग्वेदीय समाज में कदाचित् त्वाष्ट् विश्व रूप के नाम से ज्ञात था । मोहनजोदड़ो से मिली अन्य मुहरों में भी पशुपति शिव के चित्र उभरते हैं। एक में देवता योगासन मुद्रा में बैठा है, उसके हाथ दोनों ओर फैले हैं तथा हाथों में चूड़ियाँ पहने है, सिरश्रृंगी है। शिरो आभूषण से पीपल की पत्ती निकल रही है। इससे शिव के उर्वरता का प्रतीक होने का अनुमान लगता है। कालीबंगा के एक मृत्पिंड पर एक ओर सींगवाले देवता का अंकन है, दूसरी ओर बकरी को दिखाया गया है जिसे पुरुष ला रहा है। शायद बकरी की बलि देना इस चित्र में अभीष्ट है। मोहनजोदड़ों से ही प्राप्त एक अन्य मुद्रा पर योगी के दोनों ओर खड़े हुए एक-एक पुरुष दिखाए गये हैं। वे हाथ जोड़े हैं और उनके पीछे सर्प के फण दिखाई दे रहे हैं। विद्वानों का विचार है कि इस मुद्रा में शिव का सम्बन्ध नागों से दर्शाया गया है, जैसा कि आज सांप-बिच्छू शिव के आभूषण के रूप में स्वीकार किये जाते है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर एक व्यक्ति बर्छे से भैंसे पर वार करता दिखाया गया है। मैके के अनुसार यह चित्रण शिव द्वारा दुंदुभी राक्षस को मारने के वर्णन से मेल खाता है। इसी प्रकार एक मुद्रा में शिकारी हाथ में धनुष बाण लिए अंकित है, कतिपय विद्वान इसे शिव का ही किरात रूप मानते हैं।

हडप्पा से प्राप्त मोहरें एवं शिव परिकल्पना -

हड़प्पा संस्कृति के ऐतिहासिक प्रश्नों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि हड़प्पा से भी प्राप्त कई मुहरों के माध्यम से पशुपति शिव का साक्ष्य उभर का सामने आता है। इस स्थल से प्राप्त दो मुद्राओं पर देवता जैसी कोई आकृति है जिसके सिर पर तीन पंखों का आमरण मिलता है। यहीं प्राप्त एक अन्य मुद्रा के बीच कोई मनुष्य विराजमान है तथा साथ में कुछ पशुओं का अंकन है। पेड़ पर बने मचान पर एक आदमी बैठा है। मुद्रा की दूसरी ओर त्रिशूल के साथ सामने खड़ा बैल दिखाया गया है। ये सभी आकृतियों शिव के साथ संबद्ध की जा सकती हैं। हड़प्पा से ही प्राप्त एक ऐसी मुहर मिली है जिसमें पीपल की टहनी को मेहराबनुमा दिखाया गया है और इस मेहराब के भीतर से नेकर पहने हुए एक पुरुष (देवता) का चित्र दिखाया गया है जिसके सिर पर तीन नुकीले श्रृंग हैं। हड़प्पा से ही एक ऐसी मूर्ति प्राप्त हुई है जो सिलेटी चूने पत्थर की बनी है और नृत्य की मुद्रा में है। जिसे देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह एक पुरुष नर्तक की प्रतिमा है । जो अपने दाहिने पैर पर खड़ा है तथा बाँया पैर सामने की ओर उठा है। कमर के ऊपर का शरीर का हिस्सा तथा दोनों भुजाएँ बांयी ओर झुकी हुयी हैं। गर्दन अपेक्षतया कुछ मोटी है। यह प्रतिमा भारतीय संस्कृति के सागर स्वरूप प्रचलित 'नटराज शिव' की प्रारंभिक बीज रूप में मानी जा सकती है। मार्शल ने तो इसे शिव नटराज का ही रूप माना है। मार्शल को यह भी लगता है कि चूँकि गर्दन मोटी है इसलिए इस पर एक सिर न

होकर तीन सिर भी हो सकते थे। यहीं से प्राप्त एक अन्य मुद्रा में एक नीची सी पीठिका पर विशिष्ट योग के आसन में बैठे तीन मुख वाले देव-मानव के चित्रण की पहचान (सैंधव) पशुपति शिव से की गयी है। देवता की जटाएँ सींगों जैसी लगती हैं। मार्शल इस देवता को आदि शिव कहते हैं। प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में शिव को योगीनाथ माना गया है, जिनकी जटाएँ श्रृंगवत हैं। विभिन्न विद्वानों द्वारा समर्थित यह व्याख्या हिन्दू धर्म और हड़प्पा सभ्यता के लोगों में प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के बीच सम्बन्ध की ओर इंगित करती है।

इन ऐतिहासिक पुरातत्व के उत्खनन से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर शिव से संबन्धित दो-तीन तथ्यों को समझना निश्चित है कि, शिव का रंग काला या सांवला है। आर्य लोग काले नहीं बल्कि गोरे थे। अतः शिव का यह काला रंग यहाँ के रहने वाले मूल निवासियों का प्रतिनिधित्व करता है। शिव के शरीर पर वस्त्र अभाव तथा उनका यह रूप जंगली कबीलों का प्रतिनिधित्व कर रहा है। शिव लिंग की पूजा पौरुषत्व के महत्व को दर्शाता है, शिव लिंग, जैसा की डी०डी० कौशम्बी का कहना है, उत्पादन का द्योतक है, शिव के साथ सांढ़ का रहना भी पौरुषत्व को दर्शाता है और सांढ़ का धार्मिक महत्व सिन्धु क्षेत्र में था। सांढ़ की पूजा की चर्चा मिस्र में भी मिलती है। कुछ मुहरें, जो सिन्धु क्षेत्र में पायी गयी है, पर मोसोपोटामिया की धार्मिक कथाओं का प्रभाव भी प्राप्त होता है। जिस तरह सिन्धु क्षेत्र के शिव को सर्प जैसा जानलेवा जीव के बीच में दिखाया गया है। उसी तरह मेसोपोटामिया के एक महाकाव्य के नायक गिलगमेश को दिखाया गया है कि वह बाघों से लड़ रहा है। सांप के समान बाघ भी जानलेवा है। एरकिडू नामक एक अन्य विचित्र व्यक्ति का प्रमाण मिलता है जो मानव तो है लेकिन भैंसे के समान उसके सींग तथा घोड़े के समान पूँछ थी। फिर मेसोपोटामिया में ही मिली मोहरों में से एक मुहर है जिस पर धार्मिक चिन्ह बने हैं उदाहरण स्वरूप एक देवता को योगासन की मुद्रा में दिखाया गया है जो चारो ओर से पशुओं द्वारा घिरा है।

सिंधु सभ्यता में शिव उपासना के प्रचलन का अनुमान महरो पर मिलने वाली मूर्तियों से ही नहीं, वरन् बड़ी संख्या में मिले नुकीले और गोल पत्थरों से भी होता है जो लिंग के अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकते। कुछ तो लिंग की यथार्थ आकृति में भी पाये गये हैं इतना तो सर्वमान्य है कि जिस लिंग-रूप में भगवान् शिव की उपासना सबसे अधिक होती है, वह उस काल में भी प्रचलित था। कुछ अति प्राचीन और यथार्थ रूपी बड़ी लिंग मूर्तियां भी वहां पर प्राप्त हुयी हैं। ऐसी ही एक लिंग मूर्ति दक्षिण में 'गुड्डीमल्लम् नामक स्थान से मिली है जिसका समय द्वितीय शताब्दी ई०पू० माना गया है। इस मूर्ति पर शिव की मानवाकार मूर्ति भी खुदी है जिससे इसे 'मुखलिंग' की संज्ञा दी गयी है। प्रथम शताब्दी ई०पू० की निर्मित भीटा से एक लिंग मूर्ति मिली है, जिस पर पंचमुख शिव की मानवाकार मूर्ति खुदी है और शिव का पांचवां मुख मूर्ति के शिरोभाग पर है। एक तीसरी लिंग मूर्ति ट्रावणकोर में 'चेमीहलाई नामक स्थान से मिली है। इस प्रकार उत्खनन के विभिन्न ऐसे साक्ष्य हैं जो कहीं न कहीं शिव परिकल्पना से जुड़े हुए हैं। यह परिकल्पनाएं कपोल कल्पित नहीं है बल्कि प्रमाणिक हैं । जो शिव स्वरूप के होने का उद्घोष करती है । जिनमें शिव के प्रति भक्ति भाव और सम्मान गुंथा हुआ है। इन साक्ष्यों के द्वारा यह तो निश्चित है की सिंधु कालीन सभ्यता में मानव शिव उपासना से जुड़ा हुआ था अस्तु शिव की उपासना के विभिन्न प्रमाण किसी न किसी रूप में तत्कालीन इतिहास के पृष्ठों से जुड़े हैं।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त पुरातात्विक सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि, मोहनजोदड़ो और हड़प्पा कालीन संस्कृति में शिव की पूजा की शुरुआत सिन्धु सभ्यता काल से ही पायी जाती है। प्रागैतिहासिक काल से ही हिंदू धर्म में शिव के स्वरूप के प्रति भक्ति का भाव देखा गया है। प्रारंभिक काल से ही मानवीय संस्कृति शिव और उनकी अर्धांगिनी जगत जननी पार्वती की पूजा करता आयी है और इस प्रकार मानव के हृदय में उनके विभिन्न स्वरूपों की परिकल्पना भी विद्यमान है, जो तत्कालीन मुद्राओं में, अभिलेखों में, ताम्रपत्रों में, मूर्तियों में प्रतिबिंबित होती हुई दिखाई देती है। इस विषय की ओर अत्यधिक गंभीर अध्ययन करने की आवश्यकता है क्योंकि शिव आदि सृष्टि, आदि शक्ति और आदि परिकल्पना हैं । इस सृष्टि में किस ओर से उनकी भक्ति का भाव जागृत हुआ इसके ज्ञान का अनुमान लगाना हालांकि संभव नहीं है लेकिन ऐतिहासिक खोजों के द्वारा कुछ सीमा तक प्रमाणों को प्राप्त कर पाना असंभव भी नहीं है।

REFERENCES

1. **भगवान सिंह, - हड़प्पा सभ्यता और वैदिक साहित्य, भाग-1**
2. **डा० शिवस्वरूप सहाय - प्राचीन भारतीय धर्म एवं दर्शन।**
3. **जॉन मार्शल, - मोहनजोदडो एण्ड दि इण्डस सिविलाइजेशन, वाल्यूम 1.**
4. **रोमिल थापर, - भारत का इतिहास भाग-1.**
5. **रमेश चन्द्र मजुमदार, - प्राचीन भारत।**
6. **वी०डी० महाजन, - प्राचीन भारत का इतिहास।**
7. **श्री सी०वी० अय्यर, - ओरिजिन एण्ड अर्ली हिस्ट्री ऑफ शैविज्म इन साउथ इण्डिया ।**
8. **गणपति राव, - हिन्दू आइकोनोग्राफी, भाग-2.**
9. **सच्चिदानन्द मिश्र, प्राचीन भारत में ग्राम एवं ग्राम्य जीवन ।**
10. **अल्विन, दी बर्थ आफ इण्डियन सिविलाइजेशन।**
11. **विजय बहादुर राव, उत्तर वैदिक समाज एवं संस्कृति।**